निर्विकार रहती है। उन विविध भगवत्-रूपों को शुद्ध निष्काम भक्त ही जानते हैं; केवल वेदाध्ययन करने से उनका ज्ञान नहीं हो सकताः **वेदेषु दुर्ल्लभमदुर्ल्लभमात्म-भक्तौ।** अर्जुन जैसे भक्त श्रीभगवान् के नित्य प्रिय सखा हैं। अतएव जब भी प्रभु अवतार ग्रहण करते हैं तो उनके सहचर भक्त भी नाना प्रकार से भगवत्सेवा करने के लिए उनके साथ अवतरित होते हैं। अर्जुन एक ऐसा ही भक्त है और इस श्लोक के अनुसार, करोड़ों वर्ष पूर्व जब श्रीकृष्ण ने सूर्यदेव को भगवद्गीता सुनाई थी, तो अर्जुन वहाँ भी किसी अन्य रूप में विद्यमान था। परन्तु श्रीभगवान् और अर्जुन में यह अन्तर है कि श्रीभगवान् को उस इतिहास का स्मरण बना रहा, जबकि अर्जुन को विस्मृति हो गई। भिन्न-अंश जीवात्मा और परमेश्वर श्रीकृष्ण में यही भेद है। यद्यपि अर्जुन को यहाँ शत्रुविजयी, शूरवीर सम्बोधित किया गया है, पर अपने पूर्वजन्मों का स्मरण करने में वह असमर्थ है। अतः सांसारिक दृष्टि से जीव कितना भी बड़े से बड़ा क्यों न हो, परन्तु श्रीभगवान् की समकक्षता कदापि नहीं कर सकता। श्रीभगवान् का नित्य सहचर निस्सन्देह जीवन्मुक्त होता है, पर वह भी उनके तुल्य नहीं हो सकता। 'ब्रह्मसंहिता' में श्रीभगवान् को **अच्युत** कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि प्रकृति के संग में भी उन्हें स्वरूप-विस्मरण नहीं होता। अतः सिद्ध हुआ कि श्रीभगवान् एवं जीव सब प्रकार से समान कभी नहीं हो सकते; चाहे जीवात्मा अर्जुन के जैसे जीवमुक्त ही क्यों न हो। यद्यपि अर्जुन भगवद्भक्त है, तथापि समय-समय पर उसे भगवत्स्वरूप का विस्मरण हो जाता है। परन्तु यह अवश्य है कि भगवान् की अमोघ कृपा से भक्त को उनके अच्युतस्वरूप का तत्काल फिर बोध हो जाता है, जबकि अभक्त अथवा असुरों के लिए यह दिव्य तत्त्व सदा अज्ञात रहता है। इसी से गीता का यह विवरण आसुरीबुद्धि के लिए अगम्य है। श्रीकृष्ण को करोड़ों वर्ष पूर्व सम्पादित क्रियाओं का स्मरण है; किन्तु अर्जुन को नहीं, यद्यपि श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही का स्वरूप नित्य है। इस श्लोक से हमें यह भी बोध होता है कि देहान्तर करने पर जीवात्मा को पूर्ण विस्मृति हो जाती है, जबकि श्रीभगवान् को त्रिकाल में कभी विस्मृति नहीं होती, क्योंकि उनका विग्रह सच्चिदानन्दमय है। श्रीभगवान् अद्वैत हैं; उनके देह तथा स्वयं उनमें अभेद है। उनसे सम्बन्धित प्रत्येक तत्त्व चिन्मयस्वरूप है, जबकि जीवात्मा अपनी प्राकृत देह से भिन्न है। भगवान् के देह और स्वयं भगवान् में अभेद होने के कारण जब वे प्राकृत स्तर पर अवतरित होते हैं तो भी उनकी स्थिति साधारण जीवात्मा से विलक्षण रहती है। असुर श्रीभगवान् के इस परात्पर चिन्मयस्वरूप को अनुकूल भाव से अंगीकार नहीं कर सकते, जैसे अगले श्लोक में श्रीभगवान् स्वयं कह रहे हैं।

24/7

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।६।।

अजः=अजन्मा; **अपि**=भी; **सन्**=होते हुए; **अव्यय**=अविनाशी; **आत्मा**=विग्रह; **भूतानाम्**=सब प्राणियों का; **ईश्वरः**=स्वामी; **अपि**=भी; **सन्**=होने पर;